कर्म कौशल

हमारा देश चिंतकों और महापुरुषों का देश है। यहाँ प्राचीनकाल से ही विपुल साहित्य रचना होती आ रही है। महाभारत भी प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि वेदव्यास ने की थी। ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र का विवेचन यह ग्रन्थ करता है, इसी कारण कहा गया है - "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"। श्रीमद्भगवद्गीता इसी महाभारत का एक अंश है। पाण्डवों-कौरवों के मध्य हुए महासंग्राम के श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन को अपने कर्तव्य-कर्म में रत होने के लिए श्रीकृष्ण ने जो मार्गदर्शन दिया उसी का समावेश गीता में है। प्रस्तुत "कर्म-कौशल" शीर्षक पाठ में कर्तव्य-कर्म के सम्पादन की कुशलता अर्जित करने के महत्वपूर्ण सूत्र निर्देशित हैं। यह पाठ डॉ. रघुवीर प्रसाद गोस्वामी द्वारा लिखा गया है।

प्रकृति अनेकानेक जीव-समुदाय से परिपूर्ण है। जीव-समुदाय का तात्पर्य है- वृक्ष, वनस्पति, जीव-जन्तु और मानव संसृति। प्रत्येक के जीवन-संचालन हेतु जो नैसर्गिक नियम बने उन्हें प्राकृतिक नियम कहा गया पर मानव-बुद्धि ने निरन्तर परिष्कार करके जिस नियम पद्धति का विकास किया उसे कर्तव्य या कर्म कहा गया। कर्म या कर्म साधना की आवश्यकता एवं अनिवार्यता न केवल सभ्य समाज के लिये अपरिहार्य है अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के स्थायित्व के लिये भी महत्वपूर्ण है। कर्मों के सम्बन्ध में विभिन्न चिन्तकों की अपनी-अपनी दृष्टि है पर श्रीमद्भगवद्गीता में विवेचित कर्म-सिद्धान्त की आज विश्व में विशिष्ट पहचान है क्योंकि यह सार्वकालिक, सार्वजनीन एवं सत्य से अनुप्राणित है।

कर्म की आचरण प्रक्रिया पर विचार करते समय स्वाभाविक रूप से कर्म, संकल्प एवं कर्ता के स्वरूप निर्धारण पर विचार किया जाता है। वैसे तो शरीरधारियों के द्वारा जो क्रियाएँ जीवनभर संधारित होती है वे अर्थकरी ही होती हैं। ये समस्त क्रियाएँ राग-द्वेष से अभीष्ट लक्ष्य अर्थात् सुख की प्राप्ति के लिये अथवा दुःख को दूर करने के लिये होती है। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि अमुक कार्य कर्ता द्वारा सम्पन्न होने पर उसके लिये लाभदायक होगा इसलिये वह कार्य उसे करना चाहिए और अमुक कार्य हानिकारक होगा, अतः उसे नहीं करना चाहिए। गीता के मतानुसार अव्यक्त (दिखायी न देने वाली) प्रकृति एवं उससे उत्पन्न गुणों से ही कर्म सम्भव होते हैं। अज्ञान एवं मिथ्या अभिमान से ही मनुष्य स्वयं को कर्ता मानने लगता है।

गीता में कहा गया है कि संपन्न किये जाने वाले किसी भी कर्म के पाँच कारण होते हैं - अधिष्ठान, कर्ता, करण (इन्द्रियाँ) चेष्टाएँ तथा दैव (सर्वोपरि शक्ति)। सभी कर्म इन पाँच तत्वों के समूहीकरण के द्वारा उत्पन्न होते हैं। अतः यह सोचना अनुचित होगा कि केवल आत्मा या कर्ता ही कर्म करने वाला है। यह भी स्पष्ट कहा गया है कि वस्तु स्थिति ऐसी होने पर भी जो संस्कार युक्त बुद्धि न होने के कारण यह समझे कि "एकमेव मैं ही कर्ता हूँ" वह कुछ भी नहीं जानता क्योंकि मनुष्य कर्म का निमित्त मात्र है। योगेश्वर कृष्ण ने अर्जुन से यह स्पष्ट कहा था कि परिणाम पर दृष्टि न रखते हुये मनुष्य को अपना कर्म अत्यन्त श्रद्धा एवं पूर्ण समर्पण भाव से करना चाहिए।

गीताकार ने स्पष्ट किया कि कर्म करते समय कौन-कौन सी सावधानियाँ बरतना चाहिए। सबसे प्रमुख सावधानी की ओर उन्होंने अर्जुन का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि किसी सिद्धि और असिद्धि तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता में समान भाव रखकर मन, वाणी और क्रिया के पूर्ण भाव से युक्त होकर कर्म करें। साथ ही जीवन संग्राम में जय है और पराजय भी, लाभ है और हानि भी, सुख है और दुख भी तुम इन द्वन्द्वों से अनासक्त भाव पूर्वक ऊपर उठो।

इसे ही उन्होंने कामना रहित या निष्काम कर्म कहा है और फल के प्रति समत्व का यही भाव योग भी कहा गया है।

किये गये कर्म में यदि पूर्ण शुद्ध दृष्टि या भाव है तो उसके फल-प्राप्ति में संदेह का प्रश्न ही नहीं रहता किन्तु इसके लिये बुद्धि की पूर्णता का समावेश भी नितान्त आवश्यक है। केवल फल-प्राप्ति का चिन्तन करने से कर्ता का समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है और फल प्राप्त होने के पश्चात् वह उसी फल भोग में उलझ कर रह जाता है। उसकी साधना अथवा लक्ष्य प्राप्ति में कुछ व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। समत्व योग की व्याख्या में कहा गया है, कि समत्व बुद्धि उत्पन्न होने पर ही कर्म संपादन की कुशलता उत्पन्न होती है।

मनुष्य अपने स्वभावजन्य कर्म से बँधा हुआ होने के कारण पराधीन है। अपने संकल्प से विपरीत होने पर भी उसे कर्म करना पड़ता है और प्रकृति अथवा पूर्वोक्त पाँच तत्वों का समूह उसे कर्म में प्रवृत्त करता है। इस कारण कोई भी व्यक्ति यथा निर्धारित कर्म त्याग नहीं कर सकता। यदि कर्म त्याग असंभव है एवं मनुष्य को कर्म करना ही पड़ता है तो उचित यही है कि मनुष्य अपने स्वधर्म अर्थात् सत्कर्म का पालन करे। कोई धर्म एवं कर्म पूर्णतया आलोचना से रहित नहीं है। अतः कर्म शुद्धि का साधन यही है कि मनुष्य वासनाओं एवं आसक्ति की अशुद्धताओं तथा अपूर्णताओं का मन से मूलोच्छेदन कर दे। कर्मों का संचालन आत्मा अर्थात् एक विशिष्ट सत्ता करती रहती है। मनुष्य अनन्यभाव से संपूर्ण कर्मफल को ईश्वरार्पण करके अनासक्त स्थिति में परम लक्ष्य को प्राप्त होता है और उसके परम उद्देश्य में ईश्वर भी सहायक होता है।

वस्तुतः गीता का चिन्तन जीवन-संग्राम में शाश्वत विजय का क्रियात्मक अथवा व्यावहारिक प्रशिक्षण है। यह सत् एवं असत् प्रवृत्तियों का संघर्ष है। हमारा शरीर ही एक क्षेत्र (खेत) है जिसमें बोया हुआ भला और बुरा बीज संस्कार-रूप में सदैव उगता है। इसीलिये इसमें व्यक्ति को स्वयं को संस्कारित करते हुए अपने निश्चित कर्म-कर्तव्य में निरन्तर रत रहने की दृष्टि समाहित है। किसी अन्य व्यक्ति के कर्म में हस्तक्षेप करने का अधिकार सामान्य जन के लिये नहीं दिया गया है। हाँ, इस संदर्भ में यह बात पूरी तरह स्पष्ट भी की गयी है।

यह इसलिये भी उचित है कि यदि व्यक्ति किसी अन्य के कार्य में हस्तक्षेप करेगा तो वह न स्वयं ही अपना कर्म पूर्णरूपेण समर्पित होकर कर सकेगा और न उसके द्वारा उत्पन्न व्यवधान से सम्बन्धित मनुष्य का कार्य पूर्ण हो सकेगा। इसी प्रसंग में एक बात और अत्यन्त स्पष्ट रूप से कही गयी है, वह यह है कि श्रेष्ठ व्यक्ति का चरित्र अन्य व्यक्तियों के लिये सदा ही अनुकरणीय होता है और वही लोक में प्रमाण बन जाता है। अतः सामाजिक प्रमुखों को यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि वे कहीं अपने सद्कर्म से च्युत तो नहीं हो रहे हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कर्म-सिद्धान्त मानव मात्र के लिए न केवल मार्गदर्शी सिद्धान्त है अपितु वह क्रियात्मक या व्यावहारिक होने पर परम उत्कर्ष का दायक भी है। इतना अवश्य है कि इस हेतु मनुष्य को स्वार्थपरायणता का भाव त्यागकर कार्यक्षेत्र में प्रवृत्त होना पड़ेगा। कर्त्तव्य भावना के साथ किया गया कर्म आत्म संतुष्टिकारक होता है।

अभ्यास

बोध प्रश्न

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. नैसर्गिक नियमों को क्या कहा जाता है ?
2. किस ग्रन्थ में विवेचित कर्म सिद्धान्त की विशिष्ट पहचान है ?
3. कर्ता को किस प्रकार का कार्य करना चाहिए ?
4. किस कारण से मनुष्य स्वयं को कर्ता मानने लगता है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. जीव समुदाय से क्या तात्पर्य है ?
2. कर्म के पाँच कारण कौन-कौन से होते हैं ?
3. युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए योगेश्वर ने अर्जुन से क्या कहा ?
4. किस कारण से कर्ता का समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है ?
5. श्रेष्ठ व्यक्ति का चरित्र कैसा होता है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. सबसे प्रमुख सावधानी की ओर अर्जुन का ध्यान आकृष्ट करते हुए श्रीकृष्ण ने क्या कहा?
2. फल प्राप्ति में सन्देह का प्रश्न किस स्थिति में नहीं रहता है ?
3. अपने संकल्प से विपरीत होने पर भी मनुष्य को कर्म क्यों करना पड़ता है ?

भाषा-अध्ययन

(क) निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखिए -

नैसर्गिक, समुदाय, मिथ्या, योगेश्वर, व्यवधान।

(ख) निम्नलिखित वाक्यांशों के लिए एक शब्द लिखिए -

1. अपयश का देने वाला।
2. हानि करने वाला।
3. कामना से रहित कर्म।
4. जो योग का ईश्वर हो।
5. स्वार्थ से रहित भाव वाला व्यक्ति।

योग्यता विस्तार

1. गीता महाभारत के किस पर्व में समाहित है, ज्ञात कीजिए।
2. कर्तव्य परायणता से संबंधित कविताएँ याद कीजिए।
3. कर्म कौशल को जीवन में कैसे चरितार्थ करेंगे ?
4. निष्काम कर्म और सकाम कर्म पर परिचर्चा आयोजित कीजिए।
5. जिन महापुरुषों ने निष्काम कर्म करते हुये सफलता प्राप्त की उनका जीवन परिचय एकत्रित करें।

शब्दार्थ

नैसर्गिक = प्राकृतिक

मिथ्या = झूठ

समत्व= समानभाव

व्यवधान = बाधा

विवेचित = वर्णित या समझाये गये

सत्कर्म = सच्चा कार्य

हस्तक्षेप = विघ्न उत्पन्न करना, या रोक देना,

मार्गदर्शी = मार्ग दिखाने वाला,

उत्कर्ष = उन्नति,

अधिष्ठान = मूल,।

विपुल = विशाल

सार्वजनीन = विश्वव्यापी

मूलोच्छेदन = जड़ से समाप्त

अभीष्ट = चाहा हुआ, इच्छित

अनुप्राणित = प्रेरित

अपरिहार्य =जिसे टाला न जा सके

अव्यक्त = जो दिखाई न दे

निष्काम = कामना रहित

प्रक्रिया = पद्धति, विधि

आकृष्ट = खींचना, आसक्ति, लगाव

अनन्यभाव = एक ही भाव को समर्पित

च्युत = गिरा हुआ या पतित, भटका हुआ,

संतुष्टिकारक = संतोष देने वाला,

स्वार्थपरायणता = स्वयं के लिए सोचने का नज़रिया या भाव।

संसृति = धारा, मार्ग, प्रवाह

अनासक्त = आसक्ति से रहित

स्वभावजन्य = स्वभाव से उत्पन्न

परिष्कार = सुधार

वासनाओं = इच्छाओं, कामनाओं

संधारित = किसी कार्य अथवा क्रिया का रख-रखाव

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् = जो इसमें है वह सभी जगह है और जो इसमें नहीं है वह और कहीं नहीं है